इकाई 5 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि

5.3 नवजागरण की अवधारणा

5.3.1 नवजागरण और पुनर्जागरण

5.3.2 नवजागरण, पुनरुत्थान और सामाजिक सुधार

5.4 यूरोपीय नवजागरण की विशेषता

5.5 भारतीय परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति

5.5.1 मध्ययुगीनता की समाप्ति

5.5.2 औपनिवेशिक पराधीनता और पूंजीवादी विकास

5.5.3 ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा

5.6 विभिन्न धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलनों की भूमिका

5.7 राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय

5.7.1 एक राष्ट्र के रूप में भारत का विकास

5.7.2 उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष

5.8 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का अंतःसंबंध

5.9 सारांश

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम नवजागरण के स्वरूप और भारतीय नवजागरण की विशेषताओं के साथ ही राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप से भी आपको परिचित करवाएंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- नवजागरण और पुनरुत्थान में अंतर बता सकेंगे/सकेंगी;
- नवजागरण और पुनर्जागरण का आशय स्पष्ट कर सकेंगे/सकेंगी;
- यूरोपीय नवजागरण और भारतीय नवजागरण में परिस्थितिगत अंतर कर सकेंगी/सकेंगे;
- आधुनिकता और मध्ययुगीनता के अंतर को बता सकेंगी/सकेंगे;
- नवजागरण के प्रमुख कारणों को बता सकेंगी/सकेंगे;
- राष्ट्रीयता के उदय के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे;
- राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे; और
- नवजागरण और राष्ट्रीयता की चेतना में समानता और अंतर को बता सकेंगी/सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास से आपको परिचित करवाया जाएगा। इसमें आप भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि, नवजागरण की अवधारणा, नवजागरण और पुर्नजागरण के अंतर तथा पुनरुत्थान और सामाजिक सुधार का आशय भी समझेंगे। भारतीय नवजागरण को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि हम यूरोपीय नवजागरण की विशेषताओं से परिचित न हों। इस इकाई में हमने उन परिस्थितियों पर भी विचार किया है जिनके बीच नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। मध्ययुगीनता से आधुनिकता का अंतर, पूंजीवादी विकास, औपनिवेशिक पराधीनता का उल्लेख इसी संदर्भ में किया गया है। नवजागरण में विभिन्न धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलनों की भूमिका पर भी विचार किया गया है। भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास कैसे हुआ और नवजागरण तथा राष्ट्रीय चेतना के अंतःसंबंध पर भी इकाई में विचार किया गया है। इकाई आपको नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना को समझने में मददगार होगी।

5.2 भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी में सारे देश में नवजागरण की जो लहर उठी थी उसने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया था। हर आंदोलन की जड़ अपने सामाजिक आधार में होती है, जिस आधार को समझे बिना आंदोलन की मूलभूत विशेषता को सही ढंग से नहीं समझा जा सकता। अंग्रेजों के आने से पहले भारतीय समाज में पूंजीवादी तत्वों का उदय अवश्य हो चुका था लेकिन वे इतने शक्तिशाली नहीं बन सके थे कि मध्यकालीन सामंती ढाँचे को बदल पाते तथा मानव संबंधों और नये जीवन मूल्यों को सामने लाते। इसमें तत्कालीन आत्मनिर्भर ग्राम–व्यवस्था भी बाधक थी। उसके माध्यम से सामंती सामाजिक संबंधों और उसके मूल्यों–मानदंडों की कारगर ढंग से रक्षा हो रही थी। पूरा समाज कर्म फल, भाग्यवाद, पुनर्जन्म, बहुदेववाद, मूर्ति पूजा, सती प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों से ग्रस्त था। इससे पहले कि भारतीय व्यावसायिक पूंजीवादी तत्व शक्ति संचित कर इसके विरुद्ध खड़े होते, इनसे कहीं अधिक शक्तिशाली विदेशी पूंजीवादी शक्तियां देश के रंगमंच पर आ गयीं। इन्होंने पहले तो व्यापार का सहारा लिया, जिसमें भारत का बना माल विदेशों में बेचना और विदेशों का माल यहां बेचना ही मुख्य कार्य था। लेकिन ब्रिटिश पूंजीपतियों के दबाव से यह अधिक दिन नहीं चल सका। फलस्वरूप भारत के उद्योग धंधों को नष्ट करने और उसे कच्चे माल का निर्यात करने तथा तैयार माल की मण्डी बनाने की प्रक्रिया का आरंभ हुआ। बाजार के इस नये दबाव से यहां कि आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था छिन्न–भिन्न हुई।

उपर्युक्त परिस्थितियों में भारतीय नवजागरण का आरंभ हुआ जो मुख्यतः धार्मिक और सामाजिक सुधार के रूप में सामने आया। अतः इसका स्वरूप यूरोप के तमाम देशों से भिन्न दिखायी देता है। यहां सामंतीय तत्वों और पूंजीवादी शक्तियों के बीच वैसा सीधा संघर्ष नहीं हो पाया जैसा कि यूरोप में हुआ। औद्योगिक मजदूर वर्ग का अभाव और ब्रिटिश शासन सत्ता की नीतियाँ भी इसमें मुख्य रूप से बाधक सिद्ध हुई।

5.3 नवजागरण की अवधारणा

नवजागरण एक ऐतिहासिक अवधारणा है, जिसका संबंध आधुनिक काल की उस नयी चेतना से है जो मध्यकालीन चेतना से गुणात्मक रूप से भिन्न है। इसे अच्छी तरह समझने

के लिए जरूरी है कि इससे मिलते–जुलते या इसके विरोध में पड़ने वाले कुछ शब्दों के अथर्गत अंतर की जानकारी भी आपको दी जाए। इस दृष्टि से नवजागरण (रिनेसां), पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, सुधार आदि शब्दों के अर्थगत अंतर पर ध्यान रखना आपके लिए जरूरी है।

5.3.1 नवजागरण और पुनर्जागरण

भारतीय संदर्भ में कुछ विद्वानों ने आधुनिक काल के नवजागरण को पुनर्जागरण की संज्ञा दी है। उनके अनुसार भारत का भक्ति आंदोलन नवजागरण का सूचक था, अतः आधुनिक काल में घटित होने वाला जागरण उसी की अगली कड़ी के रूप में पुनर्जागरण है। यह सही है कि भक्ति का आंदोलन एक व्यापक सांस्कृतिक जागरण का परिचायक था, जिसमें जनसाधारण की सृजन शक्ति मध्यकालीन जकड़नों को तोड़कर विकसित होने लगी थी। लेकिन यह सारा विकास मध्यकालीन सामंतवादी व्यवस्था के भीतर ही घटित हुआ था, अतः लोगों के चिंतन और संवेदना की बहुत सारी कमजोरियों को दूर करने में यह कामयाब नहीं हो सका। फलस्वरूप तत्कालीन व्यवस्था ने इसके प्रगतिशील तत्वों को कुण्ठित करते हुए इसे अपने अंदर पचा लिया। इसके साथ ही इसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी–इसका ईश्वर केंद्रित स्वरूप और धर्म पर पूर्णतः निर्भरता। क्योंकि धार्मिक भावना सामाजिक समस्याओं के तर्कसंगत विश्लेषण और विवेक सम्मत समाधान के लिए अक्षम होती है, अतः भक्ति आंदोलन एक धार्मिक जागरण बनकर रह गया, उसे नवजागरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसकी आधारगत कमजोरी की ओर संकेत करते हुए श्री के.दामोदरन ने लिखा है, 'इसका कारण यह था कि कारीगर, व्यापारी और दस्तकार, जो इस आंदोलन के मुख्यतः आधार थे, अब भी कमजोर और असंगठित थे। और, इससे पहले कि उदीयमान पूंजीपति वर्ग एक वर्ग के रूप में अपना पूर्ण विकास प्राप्त करे। ब्रिटिश पूंजीपतियों ने देश को जीतकर अपने कब्जे में कर लिया और उसे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया।' (भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 337) इससे पहली बात जो स्पष्ट होकर हमारे सामने आती है वह यह है कि भक्ति आंदोलन को नवजागरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के लिए उसने एक सम्पन्न विरासत की भूमिका अवश्य अदा की है। इससे दूसरा तथ्य हमारे सामने आता है कि नवजागरण मध्यकालीन सामंतवाद विरोधी अवधारणा है, जिसका सूत्रधार उदीयमान पूंजीपति वर्ग है। अतः उन्नीसवीं सदी के नवजागरण को पुनर्जागरण की संज्ञा न देकर नवजागरण कहना ही अधिक उचित है।

5.3.2 नवजागरण, पुनरूत्थान और सामाजिक सुधार

नवजागरण और पुनर्जागरण जैसे शब्दों के अर्थगत अंतर की जानकारी के साथ ही आपको नवजागरण और पुनरूत्थान के अंतर की जानकारी भी जरूरी है। ये दोनों शब्द वैचारिक दृष्टि से परस्पर विरोधी भावों के सूचक हैं। नवजागरण में जहाँ एक नये, तर्कसंगत, विवेक–सम्मत और युग की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यापक सुधार की भावना पर अधिक जोर होता है, वहाँ पुनरूत्थान में अतीत की पुनप्रतिष्ठा को अधिक महत्व दिया जाता है। भारतीय संदर्भ में 19वीं शताब्दी के नवजागरण में धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलनों की महत्वपर्ण भूमिका रही है। लेकिन इन आंदोलनों में नवजागरण और पुनरूत्थान के तत्व प्रायः मिले–जुले दिखायी देते हैं। यही नहीं, सामाजिक सुधार और धार्मिक पुनरूत्थान को लेकर उस आंदोलन में विवाद की स्थिति भी रही है, जो आज भी दिखायी देती है। सुधार की प्रवृत्ति और पुनरूत्थान में अंतर करते हुए लाला लाजपतराय ने कहा था, 'इन शब्दों–सुधार और पुनरूत्थान–में यदि कोई वास्तविक महत्व है तो वह सामाजिक मामलों में पथ–प्रदर्शन

के लिए सुधारवादी और पुनरूत्थानवादी क्रमशः जिस अधिकार या अधिकारों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं, उसमें या उनमें निहित है। सुधारवादी तर्क और योरोपीय समाज के अनुभव पर अधिक निर्भर करते हैं, जब कि पुनरूत्थानवादी शास्त्रों, अतीत के इतिहास तथा जनता की उन परम्पराओं तथा देश की उन संस्थाओं की ओर अधिक उन्मुख हैं, जो उस समय प्रचलित थीं, जब यह राष्ट्र गौरव के शिखर पर था।'

यहाँ लाजपतराय ने दो विरोधी प्रवत्तियों की ओर संकेत अवश्य किया है, लेकिन उनका यह कहना सही नहीं है कि सुधारवादी देश की गौरवशाली परम्परा की उपेक्षा करते थे। अतीत और वर्तमान में सामंजस्य स्थापित करने के लिए वे वेद और शास्त्रों की शिक्षाओं से पर्याप्त सहायता लेते थे। अपने को हिन्दू और हिन्दू धर्म का अनुयायी मानते हुए भी वे इस्लाम और ईसाई धर्म के विरोधी नहीं थे। यहाँ तक कि वे सभी धर्मों के समन्वय द्वारा एक विश्व धर्म का स्वप्न देखते थे। देश में नवजागरण की स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात इस कोटि के सुधारकों द्वारा ही हुआ। इनके महत्व को रेखांकित करते हए श्री के. दामोदरन ने लिखा है, 'मोटे तौर पर कहा जाए तो उनकी विचार पद्धति में मानवतावाद को अधिक बल दिया जा रहा था और वे मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव समाप्त करने के इच्छुक थे। किन्तु अपने इन प्रयत्नों में वे पश्चिमी विज्ञान और उसके साथ जुड़े हुए तर्कयुक्त दृष्टिकोण को भी आत्मसात करना चाहते थे। राजा राममोहन राय के बाद इस नये दृष्टिकोण के दृढ़ प्रचारक महादेव गोविन्द रानाडे थे।' **(भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 381)**।

रानाडे ने पुनरूत्थानवादियों की आलोचना करते हुए कथा था, 'आखिर हम किस चीज का पुनरूत्थान करें? ... क्या हम पुत्रों को उत्पन्न करने की बारह विधियों अथवा विवाह की आठ विधियों का पुनरूत्थान करें, जिसमें लड़की को जबर्दस्ती उठा ले जाना सही माना जाता था तथा मिश्रित और अनैतिक संभोग को स्वीकार किया जाता था? .... क्या हम उस उन्मुक्तता का पुनरूत्थान करें, जो विवाह के बंधनों के मामले में ऋषियों और ऋषि–पत्नियों के बीच व्याप्त थी? क्या हम वर्ष–प्रति वर्ष बलि दिये जाने वाले पशुओं के अम्बारों को फिर खड़ा करके बलि प्रथा का पुनरूत्थान करें, जिसमें देवताओं के प्रसादन के लिए मनुष्यों की बलि चढ़ाने में भी संकोच नहीं किया जाता था।' इस तरह के दर्जनों प्रश्न उपस्थित करने के बाद रानाडे ने कहा है कि 'इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पुरानी प्रथाओं और रस्म–रिवाजों का पुनरूत्थान करने से हमारा कल्याण नहीं होगा, न ही यह व्यावहारिक रूप से संभव ही है।' **(भारतीय चिंतन परम्परा पृ. 382–83 से उद्धृत)** इससे पुनरूत्थान के तहत अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा की स्थिति स्पष्ट हो जाती है, जो आगे चलकर हिन्दू और मुस्लिम पुनरूत्थानवाद के रूप में नवजागरण और स्वस्थ राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक बनी है। यहाँ आपके सामने लाला लाजपत राय और महादेव गोविन्द रानाडे के दो लम्बे उदाहरण और उनकी व्याख्या इसलिए प्रस्तुत की गयी है कि आप नवजागरण और पुनरूत्थान के मूल आशय को अच्छी तरह समझ जाएँ और दोनों में आसानी से अंतर कर सकें। जहाँ तक नवजागरण की अवधारणा का प्रश्न है, वह सामाजिक विकास के एक ऐतिहासिक मोड़ की सूचक है, जिसे मध्यकाल से आधुनिक काल में संक्रमण की स्थिति माना जा सकता है। मध्यकालीन सामंती सामाजिक संबंधों के विघटन और नवीन पूंजीवादी सामाजिक संबंधों के संघटन की प्रक्रिया में इसका आरंभ होता है। अतः नवजागरण का सूत्र संचालन प्रायः नवोदित पूंजीवादी शक्तियों और उनकी प्रभाव छाया में विकसित होने वाले चिंतकों के हाथ में होता है। यूरोप में यह मूलतः सामंत विरोधी जागरण रहा है, जब कि भारत इसे सामंतवाद विरोधी के साथ ही साम्राज्य–विरोधी स्वरूप प्राप्त हुआ है। विद्वानों ने इसकी तीन प्रमुख विशेषताओं की ओर संकेत किया है–इसका धर्मनिरपेक्ष स्वरूप, मानवतावादी विश्व दृष्टि और प्राचीन संस्कृति पर इसकी निर्भरता। अपने निरपेक्ष स्वरूप के कारण

नवजागरण कालीन चिंतन का केन्द्र ईश्वर के स्थान पर बना। इस मानव–केन्द्रित चिंतन में धर्म को व्यक्ति का निजी मामला घोषित करते हुए धर्मान्धता का विरोध किया गया। इस चिंतनधारा के उदीयमान पूंजीवादी विचारधारा की प्रभाव छाया में उसके विकास की आवश्यकताओं के अनरूप राजतंत्र, सामंतवाद और तमाम सारे सामंतवादी सड़े–गले मूल्यों–मान्यताओं के विरुद्ध कठोर संघर्ष किया। इस प्रक्रिया में उसने अंधविश्वास, भाग्यवाद, परलोकवाद और तमाम सारी अतार्किक सामाजिक–धार्मिक रूढ़ियों का भी विरोध का प्रयास किया। फलस्वरूप एक मानवतावादी विश्वदृष्टि के विकास में सहायता मिली।

नवजागरण की मानवतावादी विश्व दृष्टि के तहत मानव को, व्यक्ति मनुष्य को, विश्व का केन्द्र घोषित किया गया। उसके अनुभव, उसकी मानवीय गरिमा, उसका जीवन मानव–चिंतन का प्रमुख विषय बना। व्यक्ति की स्वतंत्रता, मानव मात्र की समानता, भाईचारे की भावना, सामाजिक जीवन और उसकी विभिन्न गतिविधियों को तथ्यों के अनुरूप तर्क के आधार पर समझने–परखने की वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक उत्थान के प्रति आस्था जैसे स्वस्थ पूंजीवादी मूल्य नवजागरण की मानवतावादी उपलब्धियाँ हैं। मानवतावादी विश्वदृष्टि के तहत स्वतंत्रता और समानता को एक व्यापक आधार मिला। समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ ही परिवार में नारी की मुक्ति, नारी–पुरुष की समानता, आर्थिक क्षेत्र में सबको विकास के समान अवसर, सांस्कृतिक क्षेत्र में सबके विकास की समान सुविधाएँ, शिक्षा के समान अवसर आदि जैसे जनतांत्रिक मूल्य नवजागरण द्वारा प्रतिष्ठित हुए।

जहाँ तक प्राचीन संस्कृति पर नवजागरणकालीन संस्कृति की निर्भरता का प्रश्न है, इस पर विचार करते हुए पर्याप्त सावधानी की जरूरत है। आपको यह पहले ही बताया जा चुका है कि नवजागरण मध्यकालीन पतनशील सामंतवाद–विरोधी और आधुनिक पूंजीवादी युग की नयी अवधारणा है। मध्यकाल में भी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को व्यापक रूप से, ग्रहण किया गया था। लेकिन अपने पतनशील दौर में उसे इतना विकृत, जड़ और मानव–विरोधी बना दिया गया था कि उसने सामाजिक विकास के मार्ग को पूरी तरह अवरुद्ध कर दिया था। इसका विरोध करने के बावजूद नवजागरणकालीन चिंतकों ने अपनी नयी विश्वदृष्टि की पुष्टि के लिए प्राचीनता की विरासत का भरपूर उपयोग भी किया। इस क्रम में मध्यकालीन श्रेष्ठतम उपलब्धियों से भी प्रेरणा ली गयी। यह सही है कि 'अतीत की ओर चलो' (बैक टु द नेचर) या 'नेक जंगली' (बोनोबुल सेवेज) जैसी रूसों की मान्यताएँ और 'वेदों की ओर लौटो' जैसी स्वामी दयानन्द की मान्यताओं में पुनरूत्थान (रिवाइवलिज्म) की एक छाया अवश्य मिलती है। लेकिन नवजागरण प्राचीन संस्कृति या पुरातन का पुनरूत्थान नहीं था। नवजागरणकालीन मानवतावादियों ने अपनी नयी व्याख्या द्वारा प्राचीन विरासत का पुनरूद्धार किया और अपने युग की नयी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप उसे एक नया रूप दिया। अतः नवजागरण की संस्कृति प्राचीनता की ओर प्रत्यागमन नहीं थी। उसमें प्राचीन और नवीन दोनों असाधारण रूप से जुड़े हुए थे और इस योग से निर्मित एक सर्वथा भिन्न और नयी वस्तु के रूप में वह हमारे सामने आती है।

बोध प्रश्न –1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

1. आधुनिक भारतीय नवजागरण को किस आंदोलन के संदर्भ में पुनर्जागरण माना गया?

   क) समाज सुधार आंदोलन

   ख) भक्ति आंदोलन

ग) भक्ति आंदोलन

घ) पुनरूत्थान आंदोलन

2. अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा का आग्रह था :

क) भक्त कवियों में

ख) पूंजीपतियों में

ग) पुनरूत्थानवादियों में

घ) नास्तिकों में

3. वेदों की ओर लौटो का आहवान किसने किया?

.....

.....

.....

अभ्यास

1) नवजागरण और पुनर्जागरण के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) नवजागरण और पुनरूत्थान के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

5.4 यूरोपीय नवजागरण की विशेषता

भारतीय नवजागरण की विशेषताओं को समझने के लिए आवश्यक है कि आपको संक्षेप में यूरोपीय नवजागरण से भी परिचित करवाया जाए। यूरोप का इतिहास इस तथ्य का स्पष्ट साक्षी है कि पश्चिमी यूरोप का नवजागरण मध्यकाल और आधुनिक काल के मध्य एक संक्रमण का काल था। इसमें सामंतवादी व्यवस्था और उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों के बीच सीधी टक्कर हुई थी। चौदहवीं शताब्दी के आरंभिक दौर में इटली के उत्तरी और मध्यवर्ती क्षेत्रों में पूंजीवादी तत्व सबसे पहले प्रकट हुए। वहाँ के सौदागरों की बढ़ती हुई व्यापारिक गतिविधियों में अवरोध उत्पन्न करने वाली एक शक्ति परम्परागत सामंतवादी व्यवस्था थी। लेकिन यह व्यवस्था पूरी तरह अपने विघटन के कगार पर पहुँच चुकी थी। यहाँ के शहरी क्षेत्रों में सौदागरों और सामंतों के बीच भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें सामंतों का प्रायः सफाया हो गया। इस प्रक्रिया में सामंती सामाजिक संबंधों को दृढ़ बनाने वाली शक्ति चर्च और

पादरी वर्ग की परलोकमुखी नैतिकता और तमाम सारी मध्यकालीन रूढ़ियों, धार्मिक अंधविश्वासों के विरुद्ध भी संघर्ष हुआ। साधारण जनता को इनके बंधन से मुक्ति मिली, जिससे नये चिंतक, कवि–कलाकार सामने आए। उन्होंने अपने को और अपने आसपास की दुनिया को बंधन मुक्त होकर देखा। इससे उसकी मानवीय विकास संबंधी दृष्टि, सौंदर्य–शास्त्रीय अभिरुचियाँ, अतीत को परखने और वर्तमान को समझने की दृष्टि में व्यापक बदलाव आया। सामंतयुगीन जड़ता, निराशावाद और भ्रामक आध्यात्मिक भटकनों से मुक्त होकर लौकिक विज्ञान, लौकिक साहित्य और कला का उदय हुआ। इस नयी मूल्य–व्यवस्था में मनुष्य समूचे चिंतन और क्रियाकलाप का केन्द्र बना। उसका अनुभव, उसकी आशा, आकांक्षा, भूख–प्यास अर्थात् उसका सांसारिक जीवन साहित्य और कला के मुख्य विषय बने।

इटली में पन्द्रहवीं शती के अंत और सोलहवीं शती के उदय तक चलने वाले अनेक युद्धों की वजह से इटली की मानवतावादी संस्कृति का संपर्क यूरोप के अन्य देशों से हुआ। फ्रांस, नीदरलैंड, जर्मनी, इंग्लैंड, स्पेन आदि जैसे यूरोपीय देशों में राष्ट्रीयता के विकास के साथ नवजागरण का मार्ग सुगम हो गया। इन सभी देशों के लिए इटली की मानवतावादी संस्कृति एक प्रेरक आदर्श बनी। इस दृष्टि से 14–15वीं शती का फ्रांसीसी क्रांति का विशेष महत्व है। फ्रांस के साथ ही जर्मनी की क्रांति का स्वरूप भी भू–स्वामित्व को लेकर किसानों और भूस्वामी सामंतों का संघर्ष था। अपनी आंशिक सफलता के बावजूद इन दीर्घकालान किसान युद्धों ने मानवतावादी संस्कृति के विकास की ठोस पृष्टभमि तैयार की। आगे चलकर राष्ट्रवाद की तीव्र लहर के साथ उदीयमान पूंजीवादी व्यक्तियों के नेतृत्व में किसान–मजदूर जनता ने सामंतवाद विरोधी संघर्ष में ऐतिहासिक सफलता हासिल की। फलस्वरूप नवजागरणकालीन संस्कृति को एक ठोस आधार प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव ने इसे एक जनतांत्रिक स्वरूप प्रदान किया।

यूरोपीय नवजागरण में समय और विशेषता की दृष्टि से एकरूपता नहीं मिलेगी। सांस्कृतिक विरासत, भौतिक और ऐतिहासिक विकास तथा राष्ट्रीय परम्परा की दृष्टि से इनकी भिन्नता और विशिष्टता इन देशों के नवजागरण में प्रतिबिंबित हुई। इटली के नवजागरण में आरंभ से ही व्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्तित्व के स्वतंत्र निर्माण के आग्रह के साथ मध्यकालीन परलोकवाद या वैराग्यवाद का विरोध प्रमुख रहा है, जबकि फ्रांस के नवजागरण में फ्रांसीसी राष्ट्रवाद का स्वर प्रमुख है। वह ऐसा राष्ट्रवाद था जो समूचे यूरोप को मध्यकालीन सामंतीय सांस्कृतिक बंधनों से मुक्त करने को आतुर था। जबकि ब्रिटेन के नवजागरण की परिस्थिति और प्रकृति फ्रांस से एकदम भिन्न थी। इस भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है, 'ब्रिटेन का औद्योगिक पूंजीपति वर्ग अपनी क्रांतिकारिता के लिए कभी विख्यात नहीं रहा। उसने पग–पग पर किसानों और मजदूरों के विरुद्ध जमींदारो से समझौता किया। सामंत विरोधी क्रांति फ्रांस में हुई जहां बड़ी–बड़ी जमींदारियां तोड़ दी गई और जमीन किसानों में बांट दी गयी। सामंत विरोधी क्रांति ब्रिटेन में नहीं हुई, जहां बड़ी–बड़ी जमींदारियां कायम रहीं, और 18वीं शती में उनमें सैकड़ों एकड़ नयी जमीन मिला दी गयी। ब्रिटेन में पूंजीपतियों ने जमींदारों से समझौता किया, क्रांति नहीं की। यही कारण है कि ब्रिटेन के पूंजीपतियों और जमींदारों ने फ्रांस की राज्य क्रांति का जोरदार विरोध किया। उन्होंने यूरोप के प्रतिक्रियावादी सामंत वर्ग से मिलकर फ्रांस को परास्त किया।' (महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, प. 10) वस्तुतः ब्रिटेन में व्यापारिक पूंजी का सबसे अधिक जोर था, वहाँ की राजसत्ता भी प्रायः भूस्वामियों के हाथ में थी। इसलिए आगे चलकर वहाँ जनतांत्रिक प्रणाली आरंभ होने पर भी राजतंत्र को प्रतीकात्मक रूप में बनाए रखा गया। 'हाउस ऑफ लार्ड्स' के रूप में भी सामंतों को प्रसन्न रखने का ही प्रयास वहाँ

किया गया। इस समूचे क्रम में इजारेदार व्यापारियों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। ईस्ट इंडिया कंपनी ऐसे ही इजारेदार व्यापारियों की कम्पनी थी, जिसके प्रतिनिधियों ने व्यापार के माध्यम से भारत जैसे विशाल देश को पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ लिया। इस तरह की पराधीनता और औपनिवेशिक गुलामी की परिस्थितियों में भारतीय नवजागरण आंदोलन विकसित हुआ। फलस्वरूप वहाँ के नवजागरण की विशेषताएँ यूरोप के अन्य देशों से पर्याप्त भिन्न है।

अपनी तमाम सारी भिन्नताओं के बावजूद यूरोपीय नवजागरण की कुछ सामान्य विशेषताएँ भी हैं, जिससे उसे एक निश्चित स्वरूप प्राप्त होता है। इसकी वजह से अलग–अलग देशों में वहाँ की लोक भाषाओं का साहित्यिक भाषा के रूप में उदय हुआ, सामंतवाद–विरोधी नयी जातीयता के आधार पर राष्ट्रीय चेतना का आविर्भाव हुआ और इन सबके कारण उसमें एक मानवतावादी विश्वदृष्टि उभर कर सामने आयी। आधुनिक इटालियन, जर्मन, स्पेनिश, इंग्लिश आदि भाषाओं को नया संस्कार मिला। नवजागरण की चेतना के पोषण और विस्तार में इनसे पर्याप्त सहायता मिली। नवजागरण आंदोलन मूलतः व्यक्ति मानव की स्वतंत्रता का आंदोलन था। फलस्वरूप इसका आरंभ बिंदु सामंतवादी मध्ययुगीन धर्मिक–सामाजिक रूढ़िवादिता का विरोध था। नवजागरण आंदोलन का सूत्रपात आधुनिक काल में व्यक्तिवाद को लेकर हुआ। इससे पूर्व यूरोप के जीवन पर चर्च छाया हुआ था। पोप, पादरी और उनके गिरिजाघर व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कठोर अंकुश लगाए हुए थे। सम्राट–सामंत अपने दैवी अधिकारों की मान्यता की आड़ में साधारण जनता का क्रूर शोषण करते थे। इनके सहयोग धर्म तंत्र ने व्यक्ति मानव को दैवी चमत्कारों, अनेक सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासों की श्रृंखला में बांध रखा था। जब नवजागरण के सतय स्वतंत्रता की बात उठायी गयी तो उसका मतलब था कि व्यक्ति को उन श्रृंखलाओं से जिनमें सम्राटों–सामंतों ने, चर्च ने, धर्म ने, रूढ़ियों और अंधविश्वासों ने बांध रखा था–उससे मुक्त किया जाए। इसके लिए दैवी अधिकार के सिद्धांत को चुनौती देना अनिवार्य था। इसका प्रारंभिक प्रयास इटली में ही हुआ। आगे चलकर महान फ्रांसीसी क्रांति ने इसे चरमोत्कर्ष प्रदान किया। राजाओं के देवी अधिकार पूरी तरह नष्ट हो गए, जिसके फलस्वरूप यूरोप के अनेक देशों में लोकतांत्रिक प्रणाली स्थापित हुई। इस तरह यूरोपीय नवजागरण ने आधुनिक जनतंत्र को एक ठोस सांस्कृतिक आधार प्रदान किया।

यूरोपीय नवजागरण द्वारा निर्मित मानसिक स्वाधीनता के वातावरण में वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही चिंतन के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। राजनीति एवं अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मानव केन्द्रित नये सिद्धांत अस्तित्व में आए। साहित्य और कला के क्षेत्र में मानव केन्द्रित नये सौन्दर्यशास्त्र की रचना हुई। रूसो, वाल्टेयर, डिडरो जैसे मानवतावादी चिंतकों ने विवेक सम्मत एवं धर्मनिरपेक्ष मानवीय मूल्यों के रूप में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का नारा देकर यूरोपीय नवजागरण को एक ठोस आधार प्रदान किया।

5.5 भारतीय परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति

भारत की परिस्थितियाँ यूरोप से पर्याप्त भिन्न रही हैं। यहाँ आठवीं शती के बाद जिस मतवाद का सबसे अधिक प्रभाव बढ़ा वह इहलोक के परे का चिन्तन अर्थात् वेदांत दर्शन था। वेदांत में भौतिक जगत को माया, मानव शरीर को आत्मा का बन्दीगृह तथा जन्म–मरण के बंधनों से मुक्ति को मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बताया गया था। आत्म संयम, इन्द्रिय निग्रह, ब्रह्मचर्य, निष्कामता तथा वहम में ध्यान को मनुष्य का सर्वोच्च गुण समझा जाने लगा। इस प्रकार जब देश के महान चिंतक लौकिक जगत से परे परलोक के प्रश्नों का

समाधान ढूंढने में व्यस्त थे तब बहुसंख्यक समाज महत्वाकांक्षी राजाओं और उनके सहयोगी स्वार्थ परायण पण्डे–पुरोहितों के प्रभाव में आ गया। यहाँ के आम जन–जीवन में बहुप्रचारित कर्म–फल का सिद्धांत अपनी जड़ जमाए हुए था। वह सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि वर्तमान जीवन के कष्ट हमारे पूर्वजन्म में किए गए पापों के फल हैं, इन्हें किसी भी मानवीय प्रयास से दूर नहीं किया जा सकता। इस मान्यता ने गरीब और उत्पीड़ित बहुसंख्यक समुदाय को अपने निष्ठुर भाग्य से समझौता करने के लिए मानसिक रूप से तैयार कर लिया। प्रचलित जाति–प्रथा एवं अस्पृश्यता का अमानवीय रूप और भी क्रूर बन गया। यूरोप के मध्ययुगीन अंधकार युग की तरह भारत में भी एक अंधकार युग जैसी स्थिति बनी।

चौदहवीं–पन्द्रहवीं शती के भक्ति आंदोलन ने सामाजिक–धार्मिक जड़ता एवं विषमताओं के विरुद्ध एक सार्थक विद्रोह अवश्य किया लेकिन कई कारणों से इसे सफलता नहीं मिली और अंततः यह एक धार्मिक सुधार आंदोलन ही बनकर रह गया। फिर भी इसमें नवजागरण के अनेक तत्व विद्यमान थे। इसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए के. दामोदरन ने लिखा है, 'सांस्कृतिक क्षेत्र में इसने राष्ट्रीय नवजागरण का रूप धारण किया, सामाजिक विषयवस्तु में वह जाति–प्रथा के आधिपत्य और अन्यायों के विरुद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण विद्रोह का द्योतक था। इस आंदोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के उदय को नया बल प्रदान किया, साथ ही राष्ट्रीय भाषाओं और उनके साहित्य की अभिवृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त किया। इस प्रकार मध्य युग के इस महान् आंदोलन ने न केवल विभिन्न भाषाओं और विभिन्न धर्मों वाले जन समुदायों की एक सुसम्बद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की, बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया।' (भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 327) यह समस्त भारत में एक निश्चित उद्देश्य को लेकर चलने वाला आंदोलन था, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही शामिल थे। 'भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि' शीर्षक के अंतर्गत आपको इस आंदोलन की असफलता के कारणों के संबंध में परिचित करा दिया गया है, इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है। व्यापारी, कारीगर, दस्तकार के रूप में आर्थिक आधार की कमजोरी। इससे पहले कि एक वर्ग के रूप में उदीयमान पूंजीपति वर्ग संगठित रूप से सामंती व्यवस्था को चुनौती देता, एक अधिक शक्तिशाली विदेशी पूंजीपति वर्ग अर्थात् ब्रिटिश पूंजीपतियों ने इस देश को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया। आगे हम भारत की विशिष्ट परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति की संक्षिप्त जानकारी आपको दे रहे हैं।

5.5.1 मध्ययुगीनता की समाप्ति

नवजागरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है आधुनिकता की शुरुआत और मध्ययुगीनता की समाप्ति। अंग्रेज जब यहाँ आए तो उस समय हमारी सांस्कृतिक विरासत में बहुत कुछ ऐसा था जो गला–सड़ा और जड़ हो चुका था। कर्मफल, भाग्यवाद, परलोकवाद, चमत्कारवाद, जातिवाद, जात–पांत पर आधारित ऊँच–नीच की भावना जैसी सामंतवादी विकृतियाँ हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पर हावी थीं। ब्रिटिश शासन काल में जब यहाँ पूंजीवाद का विकास होने लगा तो यहां की सामंतवादी व्यवस्था को चुनौती देने की संभावना अवश्य बनी। लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी और साम्राज्यवादी ढाँचे के अंदर यहाँ जिस प्रकार का पूंजीवाद पनपने लगा उसमें सामंतवादी व्यवस्था और उसके मूल्य–मानों से टक्कर लेने की क्षमता नहीं थी। ऐसा करना उसके हितों के भी विरुद्ध था। अतः देशी पूंजीवादी शक्तियों के उदय के बावजूद यहाँ मध्यकालीनता की समाप्ति और आधुनिकता का आरंभ देर से हुआ। इसका सूत्रपात राजा राममोहन राय के नेतृत्व में हुआ, जिन्हें आधुनिक भारत का पिता कहा जाता है।

राजा राममोहन राय ने मध्यकालीन सड़ी–गली धार्मिक–सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों का जोरदार विरोध किया। बहुदेवोपासना, अवतारवाद, पुनर्जन्म, मूर्तिपूजा आदि जैसी मान्यताओं के विरोध के साथ ही समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर सती–प्रथा की समाप्ति और विधवा–विवाह को कानूनी मान्यता दिलाना, नारी शिक्षा को प्रोत्साहन देना, बाल–विवाह और जात–पांत, छुआछूत की मान्यता का विरोध करना, अंतर्जातीय विवाह की स्वीकृति आदि जैसे कार्यों के लिए उन्होंने कठोर संघर्ष किया। इसके लिए उन्होंने 1828 ई. में ब्रह्त समाज की स्थापना के साथ ही प्रचार–प्रसार के माध्यम के रूप में राष्ट्रीय पत्रकारिता को भी जन्म दिया। 1821 ई. में 'संवाद कौमुदी' (बंगला), 1822 ई. में मिरातउल अखबार (फारसी) और 1829 ई. में 'बंगदूत' (हिंदी) जैसी पत्रिकाएँ निकालीं। ये तीनों ही पत्र राष्ट्रीय नवजागरण के संदेशवाहक बने। बंगाल में राममोहन राय के साथ ही ईश्वरचंद्र विद्यासागर और आगे चलकर केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि चिंतकों ने इस नये आंदोलन का नेतृत्व किया। महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले, आगंरकर और आगे चलकर महादेव गोविन्द रानाडे आदि उदारवादी नेताओं ने नवजागरण की परम्परा को विकसित किया।

5.5.2 औपनिवेशिक पराधीनता और पूंजीवादी विकास

दुनिया के सबसे बड़े और शक्तिशाली साम्राज्य ब्रिटेन का गुलाम होने के कारण भारतीय नवजागरण का विकास अवरुद्ध रहा। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में सत्ताधारी वर्ग का उद्देश्य केवल व्यापारिक लाभ प्राप्त करना था। देश के नव निर्माण में उसकी कोई रुचि नहीं थी। 1857 के महा जन–विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासकों की नीति में एक मौलिक परिवर्तन हआ। राष्ट्रीय स्वाधीनता के इस प्रथम संग्राम ने विदेशी सत्ता की नींव हिला दी थी। इसमें समूचे देश की एकता और विदेशी पराधीनता से मुक्ति का स्पष्ट उद्देश्य निहित था। धर्म और वर्ण की सीमाओं को तोड़ कर इसमें हिन्दुओं के साथ हजारों की संख्या में मुसलमान भी शामिल हुए थे। इसकी प्रमुख विशेषता की ओर संकेत करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है, 'इसका नेतृत्व उन किसानों ने किया जो (ब्रिटिश) फौज में सिपाहियों और सूबेदारों के रूप में काम कर रहे थे। अनेक छोटे–बड़े सामंत इनके सहायक थे, संग्राम के नेता नहीं। फौज के भीतर वाले किसानों के साथ गांवों के गैर–फौजी किसान थे, और इन दोनों ने मिलकर जो हथियारबंद लड़ाई चलाई, वैसी लड़ाई न तो सन् 1857 से पहले कभी चलाई गयी थी और न उसके बाद कभी चलाई गयी।' (महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण) इस संग्राम की गंभीरता के फलस्वरूप ही ब्रिटिश शासकों को अपनी नीतियों में मौलिक परिवर्तन करना पड़ा। इसके पूर्व उनकी नीति आमतौर पर देशी राजे–रजवाड़ों और सामंत–सरदारों के खिलाफ थीं। क्योंकि उन्हें जीत कर समस्त भारत भूमि पर अधिकार करना उन्हें जरूरी लगा था। इसीलिए ब्रिटिश शासकों ने स्वयं द्वारा बनाए गए नये जमीदारों, बिचौलिए भारतीय व्यापारियों, कम्पनी राज पर निर्भर पढ़े–लिखे बाबुओं और भारतीय ईसाइयों को अपना सामाजिक आधार बनाया था। लेकिन 1857 के बाद उन्होंने भारतीय सामंतों को अपने शासन का सामाजिक आधार बनाया। अब देशी रियासतों को बनाए रखने की नीति अपनायी गयी, उनके मुखियों को प्रशासन में शामिल किया गया, उन्हें हर तरह की सुविधा और सुरक्षा प्रदान की गयी। इसके साथ ही जमींदारी और रैयतवारी भूमि व्यवस्था चालू कर भारत की आत्मनिर्भर ग्राम–व्यवस्था को पूरी तरह ध्वस्त किया। अब ब्रिटिश शासकों का प्रधान कार्य नवजात औद्योगिक पूंजीपति वर्ग और भारतीय जनता को अपने काबू में रखना रह गया।

इस संबंध में इस इकाई के आरंभ में ही आपको बताया गया है कि नव जागरण का अनिवार्य संबंध पूंजीवादी विकास के साथ है। विदेशियों की पराधीनता के अंतर्गत यहाँ होने वाले प्रतिबंधित पूंजीवादी विकास में वह क्षमता नहीं थी कि इस देश के सांस्कृतिक जीवन में व्याप्त पिछड़ेपन को दूर करने में सफल हो पाता। इसके विपरीत इस तरह के पूंजीवादी विकास के कारण यहाँ का नहीं विकृतियां पैदा हुई। असहाय पूंजीपति, वर्ग के साथ ही मध्यवर्ग के अधिकांश लोगों में ओछी स्वार्थपरता, अवसरवादिता, समझौता परस्ती, आपा–धापी का प्रभाव ही अधिक रहा। अपने आत्म सम्मान की रक्षा करने, पहलकदमी करने, बौद्धिक ईमानदारी और साहसिकता दिखाने, सामाजिक जीवन में सुधार लाने, वैज्ञानिक दृष्टि को विकसित करने वाली मध्यवर्गीय बेहतर प्रवृत्तियाँ यहाँ बहुत कम दिखायी दी।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध जब देश की स्वाधीनता की लड़ाई शुरू हुई तो इससे एक गुणात्मक परिवर्तन आया। देशी पूंजीपतियों के एक बड़े हिस्से ने भी जनतांत्रिक मूल्यों और आदर्शों का सहारा लेकर विदेशी शासनतंत्र के विरुद्ध मेहनतकश जनता को खड़ा करना शुरू किया। इससे समाज में नयी चेतना का उदय हुआ। ग्रामीण किसानों में जागृति के चिह्न प्रकट होने लगे। मध्यवर्ग के बहुत से लोगों में भी अवसरवादी कायरता के स्थान पर जनतांत्रिक आदर्शों के लिए जोखिम उठाने की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा। इस प्रकार ज्यों–ज्यों स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव व्यापक होता गया, देश में नवजागरण की लहर भी तेज होती गयी। जब किसान–मजदूर वर्ग हिस्सेदारी इस आंदोलन में काफी बढ़ गयी तो हमारे जनतांत्रिक आदर्श अधिक ठोस और व्यापक होने लगे। हमारी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत में जो कुछ रूढ़, सड़ा–गला और अप्रासंगिक हो चुका था, उसे छोड़ने के साथ ही वहां जो कुछ स्वस्थ और ग्राह्य था, उसे आत्मसात करते हुए नवविकसित जीवन मूल्यों के साथ उसे जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य भी आरंभ हुआ। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु और उनके मण्डल के लेखकों से लेकर द्विवेदी युगीन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ये मूल्य समाज के एक बड़े हिस्से तक पहुँचे। छायावाद के प्रसाद, निराला, पंत आदि ने भी अपने ढंग से इन्हें आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रेमचंद की रचनाओं में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे नवजागरण के मूल्यों के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप का चरमोत्कर्ष हम देख सकते हैं। प्रगतिशील साहित्यान्दोलन ने इसे और अधिक विस्तृत और ठोस बनाने का प्रयास किया। ऐसा ही विकास हम बंगला, मराठी, तेलुगु, मलयालम, उर्दू, गुजराती आदि अन्य भारतीय भाषाओं में भी देख सकते हैं।

5.5.3 ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा

बहुत से विदेशी और कुछ भारतीय विद्वानों की मान्यता है कि भारत में राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख कारण ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी की शिक्षा का प्रचार–प्रसार है। इस संबंध में औपनिवेशिक दासता के अंतर्गत आपको पहले ही बताया जा चुका है कि ब्रिटिश व्यापारिक पूंजीपतियों ने भारत पर इसलिए कब्जा नहीं किया था कि वे भारत में राष्ट्रीय जागरण लाना चाहते थे। अपने पूरे शासन काल में उनका उद्देश्य यही रहा है कि भारत जैसे कृषि प्रधान विशाल देश को कच्चे माल के निर्यात और ब्रिटेश में बने पक्के माल के आयात का बाजार बनाया जाए। यही उनका उद्देश्य था, जिसमें उनका आर्थिक लाभ भी निहित था। अतः उन्होंने जो भी प्रशासनिक सुधार किए, आर्थिक नीतियां निर्धारित की, अंग्रेजी भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया, आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों का सहारा लेकर रेल और संचार के माध्यमों का विकास किया, प्रेस की स्थापना की। इन सब कार्यों में उसका आर्थिक–भौतिक लाभ निहित था। लेकिन उनकी इच्छा के विरुद्ध इससे राष्ट्रीय एकता नवजागरण और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को भी सहायता मिली–इस बात से इन्कार नहीं किया जा

सकता। इन पर अलग–अलग विचार करके हम इसकी वास्तविकता को आसानी से समझ सकते हैं।

जहाँ तक ब्रिटिश शासन का प्रश्न है, कुछ विचारकों ने इस बात पर जोर दिया है कि भारत को एक देश और फिर एक राष्ट्र के रूप में विकसित करने में उसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेकिन यह मान्यता गलत है कि ब्रिटिश शासन की अनुपस्थिति में यहाँ राष्ट्रीय चेतना का विकास ही संभव नहीं था। राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय नवजागरण का संबंध पूंजीवादी शक्तियों के उदय के साथ जुड़ा हुआ है। अंग्रेजों के न आने पर भी इन शक्तियों का उदय यहाँ होता और राष्ट्रीय चेतना का प्रसार होता। इस संबंध में श्री अयोध्या सिंह ने लिखा है, भारत में ब्रिटिश सौदागरों के आने के समय तक पूंजीवाद का जिस हद तक विकास हुआ था, उससे स्पष्ट है कि वह उन्नीसवीं सदी तक अवश्य ही शक्तिशाली हो जाता राजसत्ता या तो उसके हाथ में होती या उसपर उसका बहुत अधिक प्रभाव होता। वह साम्राज्यवादियों के अनुप्रवेश को रोकने के लिए देश के अन्य वर्गों को अपने नेतृत्व में गोलबंद करता।' भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 23)। इससे स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन ने पूरे देश को एक शासन सूत्र में अवश्य बांधा, लेकिन उसने देश के औद्योगीकरण के मार्ग में रोड़े ही अटकाए। उनकी अनुपस्थिति में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया सहज और स्वाभाविक होती तथा यूरोप के बहुत सारे देशों की तरह सामंतवाद विरोधी आंदोलन की प्रक्रिया में यहां भी नवजागरण के मूलभूत तत्वों का अधिक ठोस और व्यापक ढंग से प्रचार–प्रसार होता।

जहां तक अंग्रेजी शिक्षा के महत्व का प्रश्न है, राष्ट्रीय चेतना के विकास में इसकी भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन इसके अभाव में राष्ट्रीय आंदोलन और नवजागरण की संस्कृति का विकास ही न होता–यह मानना एकदम गलत है। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवादी भारत में प्रशासन और व्यापारिक फर्मों के लिए सस्ते क्लर्क और दूसरी तरह के कर्मचारी पैदा करना चाहते थे। मैकाले की उच्च शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा पढ़ा–लिखा समूह तैयार करना था, जो ब्रिटिश शासन का मजबूत आधार बन सके। इस संबंध में उन्हें पूरा विश्वास था कि अंग्रेजी स्कूलों से कोई भी भारतीय नौजवान अपने माता–पिता और पूर्वजों के धर्म में अविश्वास करना सीखे बिना नहीं निकलेगा। मैकाले को पूरा विश्वास था कि उनकी शिक्षा प्रणाली भारतीय युवकों की राष्ट्रीय चेतना को कुंठित कर उन्हें सच्चा ब्रिटिश राजभक्त बनाएगी। लेकिन उसके विश्वास के विपरीत इससे नवजागरण के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ।

यहाँ यह तथ्य भी विचारणीय है कि भारत में 19वीं शती में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न भी होता तो भी यहाँ राष्ट्रीय चेतना का विकास अवरुद्ध नहीं होता। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास का सीधा संबंध तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता से है। इसकी ओर स्पष्ट संकेत करते हुए रजनीपाम दत्त ने लिखा है, 'भारतीय बूर्जुआ वर्ग (पूंजीपति वर्ग) का उदय और ब्रिटिश बूर्जुआ वर्ग के आधिपत्य के खिलाफ उसकी बढ़ती प्रतियोगिता अवश्यंभावी थी। शिक्षा की पद्धति चाहे जो भी होती और अगर भारतीय बूर्जुआ वर्ग को, अन्य प्रत्येक विचारधारा से बिल्कुल अलग रख कर, साधु–संन्यासियों की तरह सिर्फ संस्कृत के वेदों की शिक्षा दी जाती तो संस्कृति के वेदों में भी सुनिश्चित तौर से उन्हें प्रेरणादायक सिद्धांत और नारे मिले जाते।' (आज का भारत पृ. 608) कहने का मतलब यह कि राष्ट्रीय चेतना के विकास और नवजागरण की मुख्य प्रेरणा तत्कालीन परिस्थितियों में निहित थी, अंग्रेजी शिक्षा में नहीं। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका बंगला, हिंदी, मराठी जैसी देशी भाषाओं की रही है।

बोध प्रश्न– 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।

1. यूरोप के नवजागरण के उदय का कारण था :

   क) सामंतवाद की समाप्ति और समाजवाद का आरंभ

   ख) लोकतंत्र की स्थापना और राजतंत्र की समाप्ति

   ग) पूंजीवादी शक्तियों की पराजय और सामंतों की विजय

   घ) सामंतवादी व्यवस्था और उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों में टक्कर

2. मध्ययुगीनता की पहचान है:

   क) भाग्यवाद और कर्मफल में विश्वास

   ख) जातिवाद में विश्वास

   ग) परलोकवाद में विश्वास

   घ) उपर्युक्त सभी

3. 1857 के बाद ब्रिटिश शासकों की नीति में मौलिक परिवर्तन क्या हुआ?

   .....

   .....

   .....

अभ्यास

3) नवजागरण में प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के तर्कसंगत और विवेक सम्मत उपयोग के महत्व को रेखांकित कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

4) नवजागरण में अंग्रेजी शिक्षा की भूमिका स्पष्ट काजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

5.6 विभिन्न धार्मिक–सामाजिक सुधार आंदोलन की भूमिका

राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के विकास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने में 19वीं शती के सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें राजा राममोहन राय

और उनके ब्रहम समाज (1828), केशवचन्द्रसेन और उनके प्रार्थना समाज (1867), दयानंद सवस्वती और उनके आर्यसमाज (1875) आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इन सभी आंदोलनों का मूलाधार प्राचीन संस्कृति और धर्म रहा है, जो मध्ययुगीन अवैज्ञानिक अवधारणाओं से कभी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाए। फिर भी उनकी सामाजिक अंतर्वस्तु सामंतवाद विरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी थी।

राजा राममोहन राय और उनके ब्रह्म समाज ने केवल मध्यकालीन सामाजिक–आर्थिक रूढियों और विकृतियों के विरुद्ध ही संघर्ष नहीं किया, बल्कि भारतीय जनता के व्यक्ति स्वातंत्र्य, अंग्रेजों के साथ उनकी समानता और जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित अनेक प्रशासनिक सुधारों के लिए भी कठोर अभियान चलाया। उनके सभी सुधार भारतीय जनता के सामाजिक–राजनैतिक लाभ के उद्देश्य से प्रेरित थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया था, 'मुझे यह कहते हुए दुख हो रहा है कि हिन्दू धर्म की जिस वर्तमान प्रणाली पर हम लोग चल रहे हैं, वह हमारे राजनीतिक हितों को बढ़ावा देने वाली नहीं है। जात–पात, के भेद –भावों ने, जिन्होंने जनता को कितने ही टुकड़ों में बांट रखा है, हमें राजनीतिक भावनाओं से शून्य कर दिया है।.....मेरा विचार है कि इस हिन्दु धर्म में कुछ–न–कुछ परिवर्तन होने ही चाहिएं, कम–से–कम इसलिए कि हमको राजनीतिक तौर से लाभ हो और जनता को सामाजिक सुख मिल सके।' इस कार्य के लिए उन्होंने पश्चिमी विज्ञान द्वारा निर्मित नये मूल्यों का आत्मसात करते हए भारत के परम्परागत मूल्यों क साथ उन्हें जोड़कर नये युग की चुनौती का सामना करने लायक बनाया।

राजा राममोहन राय और उनके ब्रहम समाज की परम्परा आगे केशवचन्द्र सेन और महादेव गोविन्द रानाडे ने प्रार्थना समाज के माध्यम से आगे बढ़ाया। न्यायमूर्ति रानाडे ने प्रार्थना समाज के लिए अपना पूरा जीवन ही अर्पित कर दिया। इस 'समाज' द्वारा रानाडे ने हिन्दू धर्म और समाज के सुधार के साथ ही हिन्दू–मुस्लिम जनता की एकता का भी महत्वपूर्ण प्रयास किया। उनका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य था, 'सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्षरत देश भर में बिखरे विभिन्न संगठनों और आंदोलनों के प्रतिनिधियों को आपसी विचार–विमर्श के लिए प्रतिवर्ष एक स्थान पर एकत्र करना। 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के बाद उसी पण्डाल में 'राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन' का भी अधिवेशन होता था। लेकिन 1895 के पूना सम्मेलन में बाल गंगाधर तिलक आदि गरमदल के नेताओं के विरोध से यह प्रक्रिया समाप्त कर दी गयी। तिलक के उकसावे में आकर चापेकर बंधुओं ने यहाँ तक धमकी दे डाली कि यदि 'सामाजिक–राष्ट्रीय सम्मेलन' कांग्रेस के पण्डाल में किया गया तो उसमें आग लगा दी जाएगी। इससे स्पष्ट होता है कि कांग्रेस के गरमदली नेता सामाजिक सुधार के आदोलनों से खुश नहीं थे। वे परम्परागत हिन्दू धर्म की मान्यताओं पर किसी भी तरह का आघात बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि 1890 में जब लड़कियों के विवाह की उम्र 10 साल से बढ़ाकर 12 साल करने का कानून बनने लगा तब तिलक ने इसका जबरदस्त विरोध किया था, जबकि रानाडे, गोखले आदि इसका समर्थन कर रहे थे।

दयानंद सरस्वती और उनके 'आर्य समाज' का सुधार संबंधी दृष्टिकोण राममोहन राय, रानाडे आदि जैसे सुधारकों से पर्याप्त भिन्न था। आर्य समाज के आंदोलन ने भी बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहुविवाह और जात–पात का विरोध किया। स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह का समर्थन भी इसकी एक मुख्य विशेषता थी। मध्यकालीन कर्मकांडी व्यवस्था और पुरोहितवाद का भी इसने विरोध किया। लेकिन इसके साथ ही बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम आदि सभी धर्मों की निन्दा करते हुए इन्होंने केवल वेद विहित हिन्दू धर्म को ही सच्चा धर्म माना। ब्रह्म

समाज, प्रार्थना समाज आदि के सुधारों की निंदा करते हुए उन्हें देशभक्ति से हीन और ईसाइयों का अनुकरण बताया। दयानंद सरस्वती ने ईसा, मोहम्मद की शिक्षाओं की आलोचना करने के साथ ही मध्यकालीन, कबीर, नानक, चैतन्य आदि संतों के आदर्शों का भी विरोध किया। ईसाइयों और मुसलमानों को हिन्दू बनाने के अपने 'शुद्धि आंदोलन' द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय एकता में बाधक साम्प्रदायिकता की भावना में वृद्धि की। इसके बावजूद स्वदेशी राज्य को सर्वोत्तम और विदेशी राज्य को दुखदायक बताकर इन्हीं राष्ट्रीयता की भावना को दृढ़ किया। लेकिन इनकी राष्ट्रीयता की भावना हिन्दू राष्ट्रवाद तक सीमित हो गयी। इसके संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि 'आर्य समाज प्रतिरोधात्मक और गतिरोध से पीड़ित हिन्दू धर्म को एक आक्रामक, प्रचारात्मक धर्म बनाने का प्रयत्न था। उसका उद्देश्य हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान करना था। इस आंदोलन को जिस कारण कुछ बल प्राप्त हुआ, वह था उस पर राष्ट्रीयता का रंग चढ़ाना। वास्तव में यह हिन्दू राष्ट्रवाद अपना सर उठा रहा था, उसका भारतीय राष्ट्रवाद बनना कठिन हो गया।' (विश्व इतिहास की झलक, पृ. 436)। आर्य समाज अपनी इस्लाम विरोधी और ईसाई विरोधी प्रवृत्ति के बावजूद समाज के शिक्षित मध्यवर्ग को अपनी ओर तेजी से आकृष्ट करने में सफल हुआ। आर्य समाज से प्रभावित बहुत सारे लोगों ने राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया।

हिंदुओं की तरह मुसलमानों में समाजसुधार और नई जाग्रति लाने का कार्य सैयद अहमद खां (1817–1898) ने किया। उन्होंने मुसलमानों को नये जमाने के अनुसार ढालने, नयी शिक्षा में दीक्षित करने और नये विचारों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।

उपर्युक्त तथ्यों से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी आंदोलन सुधारवादी आंदोलन थे, जिनमें पुनरूत्थान और नवजागरण के प्रगतिशील मूल्यों का मिश्रण था। उन्होंने भारत की सामंती समाज व्यवस्था के मुख्य आधार वर्ग व्यवस्था, जात–पात, भाग्यवाद और रूढ़िग्रस्त तमाम अंधविश्वासों पर आक्रमण कर उदार पूंजीवादी विचारधारा के लिए मार्ग प्रशस्त किया। 19वीं शती के अंतिम और 20वीं शती के आरंभिक दशकों में राष्ट्रीय आंदोलन की तीव्रता के साथ जब किसान–मजदूर शक्तियों की सहभागिता भी बढ़ी तब राष्ट्रीयता के साथ ही नवजागरण की स्वस्थ चेतना का विस्तार हुआ।

बोध प्रश्न –3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें–

1. निम्नलिखित संगठनों की स्थापना किसने की?

   क) आर्य समाज.....

   ख) प्रार्थना समाज .....

   ग) ब्रह्म समाज.....

2. गरमपंथी नेताओं का समाज सुधार आंदोलनों के प्रति क्या रुख था?

   .....

   .....

   .....

5) आर्य समाज का दृष्टिकोण किस रूप में ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज से भिन्न था? स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

5.7 राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय

आधुनिक अवधारणा के रूप में राष्ट्रीय भावना की परिभाषा :

राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना एक आधुनिक अवधारणा है, जिसका उदय सर्वप्रथम यूरोप में पूंजीवाद के विकास के साथ हुआ। नवजागरण की भांति यह भी एक पुरानी समाज व्यवस्था की समाप्ति और नयी समाज–व्यवस्था के उदय काल में विकसित होने वाली अवधारणा है। मध्यकालीन यूरोप एक धर्मतंत्र के तहत रोम के पोप के अधीन था, जिसे रोमन साम्राज्य के नाम से जाना जाता था। उसके शासनादेशों से विभिन्न सम्राट और सामंतशाहियाँ अपना शासन चलाती थीं। लेकिन पूंजीवादी शक्तियों के उदय और विकास में इससे बाधा पड़ती थी। सामंत–सरदारों के दैवी अधिकारों की मान्यता की वजह से उनकी अधिकार सीमा में रहने वाले किसान–मजदूर और विभिन्न धंधों में लगे कारीगर–शिल्प की जनता का भी निर्मम शोषण होता था। उन्हें अपने पेशा बदलने या अन्यत्र जाकर काम करने तक ही स्वतंत्रता नहीं थी। अतः सौदागरों और पूंजीपतियों के नेतृत्व में सामंतशाही के विरुद्ध शोषित–उत्पीड़ित आम जनता का गोलबंद होना स्वाभाविक था। इस प्रक्रिया में इटली, फ्रांस, इंग्लैंड, स्पेन, नीदरलैंड में पूंजीवादी क्रांतियां हुईं। अपने देशी बाजार की सुरक्षा के लिए 'एक राज्य एक राष्ट्र' का सिद्धांत सामने आया। औद्योगिक उत्पादन को अधिक गतिशील करने के लिए सबकी स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना के जनतांत्रिक नारे सामने आए। साधारण किसान–मजदूर और कारीगर जनता को अपना श्रम बेचने की स्वतंत्रता मिली, जिससे औद्योगिक क्षेत्रों के लिए आसानी से मजदूर उपलब्ध हुए। इसी प्रक्रिया में आधुनिक राष्ट्र की परिकल्पना साकार हुई। नवोदित पूंजीपति वर्ग के लिए सबसे बड़ी समस्या बाजार की होती है। वह स्वयं अपने को और अपने 'देशी' बाजार को सुरक्षित रख कर अन्य देशों के पूंजीपतियों के साथ प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करना चाहता है। राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना के इस उद्देश्य का कारगर हथियार बनी है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर स्टालिन ने राष्ट्रीयता के प्रश्नों पर विचार करते हुए कहा है, 'बाजार पहली पाठशाला है, जिसमें पूंजीपति वर्ग अपने राष्ट्रवाद की शिक्षा ग्रहण करता है।'

पूंजीपति वर्ग की 'बाजार की भूख' उसे अपने देशी राष्ट्र की सीमाओं से बाहर औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों को उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन वहाँ के उदीयमान देशी पूंजीपति वर्ग को यह स्थिति बर्दाश्त नहीं होती। अतः राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष की स्थितियाँ पैदा होती हैं। अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि इसी प्रक्रिया में संप्रभुता सम्पन्न राष्ट्र बने हैं। भारत जैसे एशियाई देशों में राष्ट्रीयता का विकास ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की पराधीनता के वातावरण में हुआ है। ऐसे देशों में राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ के संबंध में स्टालिन ने लिखा है, 'हर तरफ से दबाए गए

उत्पीड़ित राष्ट्र का पूंजीपति वर्ग स्वभावतः आंदोलन के मैदान में उतर पड़ता है। वह अपने 'देशी भाइयों' से अपील करता है और 'मातृभूमि' के बारे में शोर मचाने लगता है। वह दावा करता है कि उसका पक्ष ही राष्ट्र का पक्ष है। ....'देशी भाई भी उसकी अपीलों को सुनकर हमेशा कान में तेल डालकर नहीं बैठते। वे उसके झंडे के नीचे गोलबंद होते हैं। ऊपर से चलने वाला दमन उन्हें भी प्रभावित करता है और उनके असंतोष को भड़का देता है। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन शुरू हो जाता है।' सामाजिक विकास की दृष्टि से यह पूंजीपति वर्ग का प्रगतिशील कदम है। यह तो हुई राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना के उदय की बात।

जहाँ तक राष्ट्र की परिभाषा का प्रश्न है, इस पर राजनीति शास्त्र के विचारक एक मत नहीं हैं। 'नेशन' के रूप में राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति लैटिन के 'नेसियो' (छ।ज्प्व्) शब्द से हुई है, जिसका मूल अर्थ है 'जाति'। 16–17 वीं शती में 'नेशन' शब्द किसी देश या राज्य की उस आबादी का सूचक था, जिसमें जातीय एकता या समानता पाई जाती थी। लेकिन 19वीं शती में राष्ट्र और राष्ट्रीयता (जातीयता के रूप में) के अर्थ में अंतर भी किया जाने लगा है। इसके साथ ही राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र की विशेषता के रूप में भी स्वीकृत है। वस्तुतः आज राष्ट्र राजनीतिक एकता और संप्रभुता का सूचक शब्द है, जिसमें अनेक राष्ट्रीयताएँ या जातीयताएँ हो सकती हैं। इस अर्थ में भारत, रूस ही नहीं, इंगलैंड, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, कनाडा आदि सशक्त आधुनिक राष्ट्र बहुराष्ट्रीय (मल्टीनेशनल) राष्ट्र हैं, जो अनेक जातियों (राष्ट्रीयताओं) से निर्मित हैं। इंग्लैंड, स्विट्जरलैंड, अमेरिका आदि बहुत सारे आधुनिक राष्ट्रों की बहुराष्ट्रीयता उनकी राष्ट्रीय एकता में बाधक नहीं बन पायी है, जबकि भारत की बहुराष्ट्रीयता उसकी एकता और संप्रभुता में बाधा उत्पन्न करने लगी है। रूस की बहुराष्ट्रीय प्रकृति उसके राष्ट्रीय बिखराव का कारण बन कर उसे अनेक स्वाधीन राष्ट्रों में बांट दिया है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय भावना को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है 'प्रत्येक ऐसे मनुष्यों का समूह जिसकी अपनी एक पृथक संस्कृति सभ्यता, भाषा और इतिहास है, एक स्वतंत्र राष्ट्र बनने की क्षमता रखता है।' इसे और अधिक उदार और व्यापक बनाने के लिए कहा जा सकता है कि अपने अतीत पर उचित गर्व, वर्तमान पर स्वस्थ विश्वास और उज्ज्वल भविष्य के प्रति दृढ़ आस्था वे महत्वपूर्ण तत्व हैं, जो राष्ट्रीय भावना को जीवंत और शक्तिशाली बनाते हैं।'

राष्ट्र के निर्माणकारी बाह्य तत्वों की ओर संकेत करते हुए प्रायः निम्नलिखित बिन्दुओं को रेखांकित करने का प्रयास भी किया गया है–

1) जाति या वंश की एकता, 2) धार्मिक एकता, 3) भाषा की एकता, 4) भौगोलिक एकता, 5) राजनीतिक संप्रभुता, 6) समान शासन, 7) समान ऐतिहासिक परम्पराएँ और स्मतियाँ, 8) समान स्वार्थ और आर्थिक हित।

इनमें से कोई भी तत्व आधुनिक समुन्नत राष्ट्रों के लिए अनिवार्य नहीं रह गया है। जाति और धर्म संबंधी एकता अब राष्ट्र के लिए कोई अनिवार्य तत्व नहीं रह गयी है। फिर भी धार्मिक मतभेद राष्ट्र की एकता में बाधक अवश्य बन सकते हैं। ऐसे राष्ट्रों में राजनीति और प्रशासन के लिए धर्मनिरपेक्षता की नीति अनिवार्य बन जाती है। धार्मिक मतभेद के कारण हिन्दुस्तान और पाकिस्तान अलग राष्ट्र बने। इंगलैंड, जर्मनी, स्विटजरलैंड, रूस, अमेरिका, भारत आदि में विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं। चीन बौद्ध, इस्लाम और इसाई मतावलंबियों के बावजूद एक राष्ट्र है। भौगोलिक एकता कई कारणों से राष्ट्र के स्थायित्व के लिए एक आवश्यक तत्व माना जा सकता है। इसके अभाव में सांस्कृतिक भिन्नता, भाषा आदि का अंतर तो आता ही है, साथ ही प्रशासनिक दृष्टि से भी असुविधा होती है। यही कारण है कि पूर्वी बंगाल बहुत दिनों तक पाकिस्तान का अंग नहीं रह सका।

राजनीतिक संप्रभुता राष्ट्र को एक अखण्ड इकाई बनाने के लिए आवश्यक तत्व हैं। इसी के कारण विभिन्न राष्ट्रीयताओं या जातीयताओं के लोग सद्भावपूर्वक, भाईचारे की भावना के साथ एक राष्ट्र में रहते हैं। समान शासन राजनीतिक एकता का वह तत्व है जो राष्ट्र की अखण्डता को सुरक्षित रखता है। 'एक राष्ट्र : एक राज्य' की परिकल्पना को साकार करने में एक सरकार का होना अनिवार्य है। कनाडा में फ्रांसीसी और अंग्रेज सदियों से एक ही राज्य और सरकार के अधीन रहने के कारण अपने को कनाडा निवासी समझते हैं। इसी तरह भारत में हिन्दू, मुसलमान और इसाई जब तक अपने को और एक दूसरे को पूरी तरह भारतीय नहीं मान लेते तब तक राष्ट्र की एकता के लिए खतरा बना रहेगा। धर्मनिरपेक्षता की नीति और उसका दृढ़तापूर्वक पालन समान शासन द्वारा इस उद्देश्य को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। राष्ट्रीयता का सबसे स्पष्ट तत्व भाषा है, जिसके माध्यम से राजनीतिक एकता में भी सहायता मिलती है। बहुत से बहुराष्ट्रीयता वाले देश बहुभाषी भी हैं। ऐसे देशों में सभी भाषाओं में समानता और एकता का भाव आवश्यक है। इसी प्रकार समान ऐतिहासिक–सांस्कृतिक विरासत भी राष्ट्रीयता की भावना को दृढ़ करती है। अधिकांश राष्ट्र अपना पृथक इतिहास रखते हैं। इतिहास सदियों में बनता है, जिसके माध्यम से हमारी संस्कृति और साहित्य सुरक्षित रहता है। इनसे गुलाम देश में विदेशी शासन से मुक्ति के लिए लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीय भावना का निर्माण होता है। इसी प्रकार समान हित और समान आर्थिक लाभ भी एक क्षेत्र विशेष के लोगों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधने के लिए आवश्यक है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है उपर्युक्त सभी तत्व राष्ट्रीय भावना के प्रसार और उसके एकीकरण में सहायक होते हैं। देशकाल की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप कभी और कहीं कोई तत्व अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है, तथा कुछ तत्वों की अनुपस्थिति में भी राष्ट्रीय भावना दृढ़ हो सकती है।

5.7.1 एक राष्ट्र के रूप में भारत का विकास

यहाँ आपके सामने एक ऐसे प्रश्न पर विचार किया जा रहा है, जिसके संबंध में आपकी कुछ अपनी भी मान्यताएँ होंगी। आप यह सोच सकते हैं अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, अकबर के समय में भी भारत एक राष्ट्र रहा है। लेकिन राष्ट्र की आधुनिक परिभाषा पर विचार करते हुए हमने अच्छी तरह देख लिया है कि इस संबंध में हमारी परम्परागत धारणाएँ भ्रामक हैं। राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना की अवधारणा आधुनिक औद्योगीकरण और पूंजीवाद के विकास की देन है। अशोक, चन्द्रगुप्त, अकबर का भारत के बहुत बड़े भू–भाग पर अधिकार अवश्य था लेकिन देश के शासन की बागडोर विभिन्न क्षेत्रीय सामंतों–सरदारों के हाथ में थी। यह सामंती व्यवस्था देश के राष्ट्रीय स्वरूप में बाधक थी। इस व्यवस्था के टूटने पर ही राष्ट्रीय चेतना का विकास संभव था। यह कार्य सम्पूर्ण देश के ब्रिटिश शासन के अधीन होने के बाद आरंभ हुआ। इसका मूल केन्द्र बना साम्राज्यवादी विरोधी या औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति का संघर्ष।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि राजा राममोहन राय ने राष्ट्रीयता के बीज बोये थे। विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलनों ने उससे अंकुर उगाने में मदद की। सही अर्थों में भारत का एक राष्ट्र के रूप में देखने की भावना का उदय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के दौरान हुआ। इसका प्रस्थान बिन्दु 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम बना। 1857 से पूर्व भी कुछ ऐसे संगठन अवश्य बने थे, जिन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर, राजनीतिक रूप से कुछ समस्याओं को उठाया था। ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन (1851), 'बाम्बे एसोसिएशन' (1882), 'पूना डक्कन एसोसिएशन' 1852) आदि के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' ने बहुत सारे भारत विरोधी कानूनों की

आलोचना की, भारतीय प्रशासन के जनतंत्रीकरण और उसमें भारतवासियों के प्रतिनिधित्व की मांग उठायी। सिविल सर्विस आंदोलन, अनेक जनतांत्रिक मांगो और वैधानिक अधिकारों की लड़ाई को वह बराबर राजनीतिक रंग देता रहा। लेकिन 1857 के सशस्त्र विद्रोह के बाद ब्रिटिश सत्ताधारियों ने इन तमाम संगठनों पर कठोर अंकुश लगा दिए। सशस्त्र आंदोलन में भाग लेने वाली हिन्दू–मुसलमान जनता का कठोर दमन किया गया। इसके फलस्वरूप 1870 के बाद अनेक राष्ट्रीय संगठनों का निर्माण हुआ। इस दृष्टि से 'पूना सार्वजनिक सभा' (1870) 'इंडियन एसोसिएशन' (1876), 'मद्रास महाजन सभा' (1884), 'डक्कन एजुकेशन सोसायटी' (1884) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त सभी संगठनों का चरित्र राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष था। इनके द्वारा एक और समाज के विभिन्न वर्गों का असंतोष व्यक्त हो रहा था तो दूसरी ओर भारत की राष्ट्रीय चेतना का तीव्र प्रवाह भी प्रकट हो रहा था। इन संगठनों ने राष्ट्रीय आंदोलन को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों तक सीमित न रखकर उसे भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों तक ले जाने का प्रयास किया। अतः इनके माध्यम से समूची भारतीय जनता का तीव्र असंतोष व्यक्त हो रहा था। इस असंतोष को नियंत्रित करने के लिए ही 1885 में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुई थी। लेकिन दो–तीन वर्ष तक सरकारी नियंत्रण में रहने के बाद लगभग 50 वर्षों तक राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर इसी संगठन के हाथ में रही है। इसके नेतृत्व और राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के संबंध में आपको पिछली इकाई में विस्तार से बताया जा चुका है। इस संस्था ने भारत को एक राष्ट्र का रूप प्रदान करने और राष्ट्रीय चेतना के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

5.7.2 उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष

भारत को एक राष्ट्र का रूप प्रदान करने और राष्ट्रीय चेतना का विकास करने में औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध समस्त भारतीय जनता के संघर्ष का सबसे अधिक महत्व है। भाषा, धर्म, संप्रदाय, जाति–प्रजाति, रहन–सहन, खान–पान, भौगोलिक दूरी, जलवायु आदि के संबंध में भारत में इतनी विविधता है कि इसका एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो पाना बहुत कठिन था। सांस्कृतिक एकता को लेकर कहा जाता है कि यहां विविधता में भी एकता है। यह बात तो पूरे यूरोप के संबंध में, विशेष रूप से पश्चिमी यूरोप के संबंध में भी कही जा सकती है। इसके बावजूद वहां दर्जनों राष्ट्र अस्तित्व में आए। अतः भारत में एकता की अपेक्षा विभेदक तत्व अधिक हैं। लेकिन एक लम्बे समय तक ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्ति के लिए चलने वाले संघर्ष ने भारत की जनता को एकसूत्रता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस गुलाम देश में विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम द्वारा राष्ट्रीय चेतना को ठोस रूप प्राप्त हआ है। इस संग्राम में क्षेत्रीयता, भाषायी, धार्मिक, जातीय, सभ्यता और संस्कृति संबंधी मतभेदों को भूलकर भारतीय जनता एक हुई है। उसने आपसी प्रेम, पारस्परिक सद्भाव, समानता और भाई–चारे की भावना को इस संग्राम के माध्यम से दृढ़ किया है। क्योंकि इसी में उनका अपना लाभ निहित था।

भारत में नयी भूमि व्यवस्था के अंतर्गत जमींदारी और रैयतवारी व्यवस्था के लागू होते ही यहां की आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गयी। अब उसका उत्पादन बाजार से जुड़ गया, जिस पर ब्रिटिश शासन सत्ता के माध्यम से ब्रिटेन का पूंजीपति वर्ग हावी था। अतः देशी (राष्ट्रीय) नवजात पूंजीपति वर्ग का उसके साथ प्रतियोगिता में आना स्वाभाविक था। हर देश का पूंजीपति वर्ग अपना राष्ट्रीय बजार सुरक्षित रखना चाहता है। ब्रिटिश शासनतंत्र अपनी सत्ता का दुरुपयोग केवल नवोदित भारतीय पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध ही नहीं कर रहा था, बल्कि ग्रामीण किसान और मजदूर वर्ग के आर्थिक शोषण को भी तीव्र कर रहा

था। ऐसी स्थिति में भारत के पूंजीपति वर्ग की ओर से पहले कुछ अधिकारों और प्रशासनिक सुधारों की मांग उठाई गयी। आगे चलकर उसने भारत के शोषित–उत्पीड़ित वर्गों को भी गोलबंद किया और उनका नेता बनकर क्रमशः अधिक अधिकारों की मांग उठायी। इसी प्रक्रिया में स्वदेशी के प्रयोग, असहयोग, सत्याग्रह आदि जैसे देशभक्ति पूर्ण नारों को प्रचारित किया गया। ये राष्ट्रीय नारे बने। स्वदेशी आंदोलन वस्तुतः देशी (राष्ट्रीय) बाजार की प्राप्ति का पूंजीवादी आंदोलन था कि यह पूरे देश में फैला, इसलिए यह स्वदेश प्रेम और स्वाधीनता का आधार भी बना। स्थान–स्थान पर विदेशी कपड़ों और अन्य विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गयी। विदेशी माल की दुकानों पर धरने दिये गये। स्वदेशी का यह आंदोलन विदेश में बनी वस्तुओं के विरोध तक ही सीमित नहीं रहा। इसके भाषा, संस्कृति आदि अनेक क्षेत्रों में भी अपने को प्रकट किया। स्वदेशी भाषा, भारतीय संस्कृति को विदेशी भाषा और विदेशी संस्कृति के विरुद्ध खड़ा किया गया। विभिन्न भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में विकसित होने में सफलता मिली। हिंदी, उर्दू, मराठी, बंगला आदि का राष्ट्रीय साहित्य सामने आया। अगली इकाइयों में इस संबंध में आपको पूरी जानकारी मिल सकेगी।

वैसे तो 1857 के सशस्त्र संग्राम के बाद भारतीय समाज में एक वर्ग के रूप में विभिन्न वर्गों का उदय और उनके अंतर्विरोध उभरने लगे थे। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप भारतीय समाज के सभी प्रमुख वर्गों के मध्य उपस्थित अंतर्विरोध तेज हुए। युद्ध से उत्पन्न आर्थिक मंदी का सबसे गहरा प्रभाव भारतीय मजदूर और किसान के जीवन पर पड़ा। इस आर्थिक संकट ने एक ओर ब्रिटिश पूंजीपतियों और भारत के बड़े राष्ट्रीय पूंजीपतियों के बीच विरोध को तेज किया तो दूसरी और देश के बड़े और छोटे पूंजीपतियों के बीच के अंतर्विरोध को भी बढ़ाया। इसके साथ ही देशी पूंजीपतियों और मजदूरों के बीच तथा किसानों और जमींदारों के बीच के अंतर्विरोध भी तीव्र हुए। 1928 के आसपास वेतन में कटौती, मजदूरों की छंटनी, बढ़ती हुई महंगाई के बावजूद कृषि–उपज के मूल्यों में स्थिरता, बढ़ते हुए भूमिकर आदि ने भारतीय जनता में व्यापक आक्रोश पैदा किया। इन स्थितियों के बीच जो सबसे तीखा और प्रमुख अंतर्विरोध सिद्ध हुआ, वह समस्त भारतीय जनता और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के बीच का अंतर्विरोध था। इन सबकी वजह से देश की जनता में एक क्रांतिकारी उभार नजर आया। इसमें सशस्त्र क्रांतिकारियों की गतिविधियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये सभी तथ्य भारत को एक राष्ट्र का रूप देने में सहायक सिद्ध हुए।

राष्ट्रीय चेतना के विस्तार और उसे दृढ़ बनाने में 1930 के बाद की परिस्थितियों ने विशेष योग दिया। बहिष्कार, असहयोग, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा जैसे नारों की वजह से महात्मा गांधी देश के निर्विवाद नेता बने। उनके आह्वान का देश की जनता पर गहरा असर पड़ता था। लेकिन इन आंदोलनों को वे जिन सीमाओं में रखना चाहते थे, वह कभी संभव नहीं हुआ। मिल मजदूरों की हड़ताल, किसानों के लगानबंदी और जमींदारों के शोषण के विरुद्ध आंदोलन सभी को राजनीतिक रंगत मिलने लगी। जमींदार विरोधी किसान आंदोलनों का चरित्र भी उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध आंदोलन का रूप धारण करने लगा। राष्ट्रीय आंदोलन के दमन और नेताओं की गिरफ्तारी से देशव्यापी आंदोलन होने लगे। इसमें समाज के सभी तबके सक्रिय हुए थे। 6 मई 1930 में गांधी जी की गिरफ्तारी पर पूरे देश में व्यापक हड़ताल हुई। इन सारी गतिविधियों से समस्त भारतीय जनता की एकता दृढ़ हुई। भाषा, क्षेत्र, धर्म, सम्प्रदाय आदि की दीवारें ढह गयीं। कहने का मतलब कि उपनिवेशवादी गुलामी से मुक्ति के संघर्ष के दौरान भारत की राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ, जिसका एक लम्बा और संघर्षपूर्ण इतिहास है। इस प्रक्रिया में अपनी ढुलमुलपन की नीति को त्याग कर मध्य वर्ग के एक बड़े हिस्से ने भी अपना अमूल्य योगदान किया है।

5.8 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का अंतःसंबंध

भारतीय संदर्भो में नवजागरण की चेतना के विकास में मध्यकालीन सामंतीय रूढ़ियों के विरोध के साथ ही आगे चलकर उपनिवेशवादी दासता के विरोध की भावना का भी पर्याप्त योगदान रहा है। यहाँ ब्रिटिश शासन सत्ता एक तरफ भारत की स्वाधीन चेतना को अवरुद्ध कर रही थी तो दूसरी ओर सामंतविरोधी चेतना के विकास में भी बाधक थी। क्योंकि वह सामंतीय तत्वों के साथ गठजोड़ द्वारा ही अपने शासन को स्थायी और दृढ़ बनाने के प्रयास में थी। अतः जनता की स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व जैसी जनतांत्रिक चेतना का विकास उसके हित में नहीं था। यूरोप में नवजागरण ने जिस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना के मार्ग को प्रशस्त किया वैसा भारत में नहीं हो पाया। लेकिन आगे चलकर वहाँ भी राष्ट्रीय चेतना के उदय और विकास के क्रम में नवजागरण के मूल्य अधिक ठोस हुए। यूरोप का नवजागरण मूलतः सामंत–विरोधी जागरण था, जिसकी तीन प्रमुख विशेषताएँ थीं–धर्मनिरपेक्षता, मानवतावादी विश्वदृष्टि तथा प्राचीन संस्कृति पर निर्भरता। ये विशेषताएँ न्यूनाधिक मात्रा में 'एक राज्य–एक राष्ट्र' के रूप में राष्ट्रीयता की चेतना के उदय और विकास में भी सहायक बनीं। यह बात इटली के नवजागरण और राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एकदम सही है। क्योंकि वहाँ प्राचीनता और राष्ट्रीयता की दोनों परम्पराएँ एक साथ आईं। यूरोप के अन्य देशों में राष्ट्रीय विकास ने बाद में चलकर नवजागरण के विस्तार का मार्ग प्रशस्त किया। लेकिन भारतीय परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना के उदय के पूर्व ही ब्रिटिश शासन सत्ता की इच्छा के विरुद्ध विभिन्न सुधार आंदोलनों के माध्यम से नवजागरण का सूत्रपात हुआ। इसका भी आरंभिक रूप धर्मनिरपेक्ष एवं मानवतावादी ही रहा। लेकिन नवीन संस्कृति के प्रति इसमें प्रगति और पुनरूत्थान का मिश्रण भी प्रायः बना रहा। राष्ट्रीयता की चेतना के उदय और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों की शुरुआत से नवजागरण आंदोलन को यहाँ बल मिला। इस दृष्टि से राष्ट्रीयता की भावना और नवजागरण में प्रायः समानता दिखायी देती है। इन दोनों के बीच अंतर्विरोध भाव ही दोनों के स्वस्थ विकास के लिए अनिवार्य शर्त है। लेकिन भारतीय परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण संबंधी मान्यताओं के बीच पर्याप्त अंतर्विरोध भी दिखायी देता है। यह अंतर्विरोध राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय प्रमुख शक्तियों के अंतर्विरोधों के कारण अधिक गहरा भी हुआ है। सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलनों में जो अंतर हमें राजा राममोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारों में मिलता है, उसका स्पष्ट प्रतिबिंबन 1885 ई. में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उदारवादी और उग्र राष्ट्रवादी नेताओं के विचारों में भी स्पष्ट रूप से हुआ है।

कांग्रेस के पुराने नेताओं विशेष रूप से सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, फिरोजशाह मेहता, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले आदि कांग्रेस को एक उदारवादी मार्ग पर चलाना चाहते थे। जबकि बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविंद घोष, लाला लाजपत राय आदि उसे एक संघर्षशील उग्र मार्ग पर ले जाना चाहते थे। दूसरी इकाई में नरमदल और गरमदल या उदारवादी और राष्ट्रवादी के रूप में इन दोनों धड़ों का परिचय आपको दिया जा चुका है। यहाँ राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण संस्कृति के मध्य उपस्थित तीखे अंतर्विरोध पर प्रकाश डालना ही हमारा लक्ष्य है। इस संबंध में श्री अयोध्या सिंह का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'नेशनलिस्ट (राष्ट्रवादी) माडरेटों (उदारवादियों) से राजनीतिक विचारों में जितने आगे थे, सामाजिक विचारों में उतने ही पीछे थे। नेशनलिस्टों के राजनीतिक विचारों और माडरेटों के सामाजिक विचारों को लेकर अगर कोई नेतृत्व पैदा होता तो देश राष्ट्रीय स्वाधीनता और समाजवाद की तरफ बड़े तेज कदमों से चलता और प्रतिक्रियावादी तथा विभाजनवादी शक्तियों को सिर उठाने का मौका न मिलता।' (भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 158–59)।

1890 में जब लड़कियों की शादी की उम्र 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष करने का कानुनी प्रस्ताव उपस्थित हुआ तो तिलक ने इसका विरोध किया, जबकि रानाडे, गोखले आदि इसका समर्थन कर रहे थे। तिलक ने शिवाजी उत्सव और गणेश पूजा जैसे साम्प्रदायिक रंगत वाले उत्सवों को राष्ट्रीय उत्सव के रूप में मनाना शुरू किया यही नहीं, उन्होंने गोरक्षा समिति बनाकर उसके लिए आंदोलन किया और कांग्रेस के मंच से ऐसी समस्या को उठाने का असफल प्रयास किया। बंगाल में भी काली पूजा को इसी रूप में लिया गया। यह सब स्वस्थ नवजागरण की चेतना के विपरीत ही नहीं था, बल्कि धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय चेतना के विकास में भी बाधक बना। ऐसी चीजों का फायदा उठाकर अंग्रेज शासकों के लिए हिन्दू–मुसलमानों के बीच शत्रुता पैदा करने में आसानी हुई और कांग्रेस को सहज ही हिन्दू संगठन साबित कर दिया गया। इसका परिणाम था 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना और मिस्टर जिन्ना जैसे कट्टर कांग्रेसी और धर्मनिरपेक्ष मान्यताओं वाले नेता का 1921 में मुस्लिम लीग का अध्यक्ष बनना और अंततः 1947 में भारत–पाक विभाजन। इसके बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रीयता चेतना के प्रसार में उग्र राष्ट्रवादियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें विशेष रूप से तिलक ने राष्ट्रीय आंदोलन को साधारण जनता के बीच ले जाने का सफल प्रयास किया है। फिर भी इसे स्वीकार करना पड़ेगा कि इस बिन्दु पर आकर राष्ट्रीयता और नवजागरण के मध्य एक गहरा विरोध भी पैदा हुआ तथा दोनों का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप एक सीमा तक खंडित हुआ।

नवजागरण मूल्य–मानों के दृढ़ीकरण में राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्रीय आंदोलन की भूमिका

राष्ट्रीयता की भावना और नवजागरण संस्कृति के जिन अंतर्विरोधों की ओर संकेत किया गया है, वे परिस्थितिजन्य होने के साथ ही तत्कालीन नेतृत्व की प्राचीन संस्कृति के प्रति भिन्न–भिन्न दृष्टि को रेखांकित करते हैं। इस तरह की भिन्नता हमें यूरोपीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के पारस्परिक संबंधों में भी दिखायी दे सकती है। यह भिन्नता या अंतर्विरोध किसी स्थायी विशेषता के संकेतक नहीं हैं। राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण प्रायः परस्पर अवलंबित हैं और दोनों ही एक दूसरे के विकास में सहयोगी बन कर आते हैं। कुछ अंतर्विरोधों के बावजूद भारतीय स्थितियों में भी हम इस तथ्य को आसानी से देख सकते हैं। सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलनों के माध्यम से भारतीय नवजागरण में भाग लेने वाली प्रगति एवं पुनरूत्थान की दोनों धाराएँ समानांतर प्रवाहित हुई हैं। अपनी पुनरूत्थानवादी दृष्टि के बावजूद तिलक अपने समय में राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता सिद्ध हुए। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को अपेक्षाकृत अधिक व्यापक जनाधार दिया। कम–से–कम उसे निम्न मध्य वर्ग तक ले गए। आगे चलकर महात्मा गांधी ने कांग्रेस की बागडोर संभाली। सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी अधिकांश मान्यताएँ पुनरूत्थानवादी दृष्टि से अनुप्राणित थीं। फिर भी राष्ट्रीय आंदोलन को किसान–मजदूर जनता तक ले जाकर उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के साथ ही नवजागरण संस्कृति के मार्ग को प्रशस्त किया।

महात्मा गांधी के आह्वान पर, समूचे देश की जनता राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय ही हुई। गांधी जी की वर्ण–व्यवस्था और जाति प्रथा संबंधी मान्यताओं की सीमाओं को तोड़कर स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की भावना से परिपूर्ण होकर देश की किसान–मजदूर, साधारण जनता ने अपनी राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। देश की आजादी के लिए लड़े जाने वाले राष्ट्रीय संघर्ष ने बीसवीं शती के तीसरे और चौथे दशक में नवजागरण की प्रक्रिया को केवल तेज ही नहीं किया, वरन् उसे ठोस और व्यापक भी बनाया। महात्मा गांधी के नेतृत्व से पूर्व राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का प्रभाव क्षेत्र उच्च वर्ग या अधिक–से–अधिक शिक्षित मध्यवर्ग तक ही सीमित था। लेकिन गांधी जी के नेतृत्व में सेवा समितियों के गठन

और असहयोग तथा सत्याग्रह के माध्यम से स्वाधीनता संघर्ष की भावना शहरों के साथ गांव–गांव तक सभी तबकों के बीच पहुँची। यह सही है कि सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रीय जागरण को एकसूत्रता प्रदान करने में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष सबसे महत्वपूर्ण है। लेकिन यह संघर्ष राजनीतिक स्वाधीनता या राष्ट्रीय जागरण तक ही सीमित नहीं रहा, नवजागरण के रूप में व्यापक सामाजिक जागरण भी इसके साथ जुड़ा। देश की स्वतंत्रता के साथ जन–जन की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना का मेल किसी एक व्यक्ति का कार्य न होकर जनता के प्रयास का प्रतिफल है। यही राष्ट्रीयता तथा नवजागरण की चेतना का भी आधार है। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रीय भावना और नवजागरण एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक की अनुपस्थिति में दूसरे का अस्तित्व में आना, बने रहना और स्वस्थ तथा ठोस रूप धारण करना संभव नहीं है।

बोध प्रश्न –4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें–

1. राष्ट्र की अवधारणा का उदय कैसे हुआ?

.....

.....

.....

.....

2. धर्म आधारित राष्ट्रीयता भारत के लिए अहितकर क्यों है?

.....

.....

.....

.....

3. एक राष्ट्र के रूप में भारत का उदय कब हुआ?

.....

.....

.....

4. उदारवादियों और राष्ट्रवादियों में मुख्य अंतर क्या है?

.....

.....

.....

.....

अभ्यास

6) भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

7) भारतीय संदर्भ में राष्ट्रीय भावना और नवजागरण की चेतना के अंतर्विरोधों के प्रमुख बिंदुओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

5.9 सारांश

- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास नामक इस इकाई में आपने भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया है। भारत में पूंजीवाद के स्वाभाविक विकास से पूर्व ही यहाँ ब्रिटिश सत्ता की स्थापना हो गई जिसने भारत में पूंजीवाद के विकास को प्रभावित किया।
- नवजागरण की चर्चा सबसे पहले यूरोप में हुई जब पंद्रहवीं शताब्दी में इटली तथा दूसरे यूरोपीय देशों में उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों और सामंतवाद के बीच सीधी टक्कर हुई और इससे नये जीवन मूल्य अस्तित्व में आए।
- नवजागरण की अवधारणा को पुनर्जागरण, पुनरूत्थान और समाज सुधार के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। नवजागरण न तो अतीत के किसी जागरण का पुनर्जागरण है और न ही अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा। नवजागरण तो अतीत के सड़े–गले मूल्यों को त्याग कर नये युग के अनुरूप नये मूल्यों की स्थापना है।
- यूरोप के नवजागरण से भारतीय नवजागरण का मुख्य अंतर यह है कि भारत में नवजागरण की भावना का विकास राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौर में हुआ। भारत में नवजागरण का उदय मध्ययुगीनता की समाप्ति, औपनिवेशिकता के दौर में पूंजीवाद के विकास और अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के बीच हुआ। विभिन्न धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों ने इसे गति और शक्ति प्रदान की यद्यपि पुनरूत्थानवादी भावनाओं ने इस पर नकारात्मक प्रभाव भी डाला।
- राष्ट्र के रूप में भारत का विकास भी राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष के दौर में हुआ। भारत एक बहुराष्ट्रीयता का देश है जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, भाषा और संस्कृति के लोग रहते हैं इसलिए भारत में राष्ट्रीयता का विकास के आधार बने धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्र और समाजवाद के मूल्य।
- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का गहरा संबंध है यद्यपि उग्र राष्ट्रवादी विचार सांप्रदायिक और पुनरूत्थान रूप में उभरे जिसकी प्रतिक्रिया ने द्विराष्ट्र के सिद्धांत को जन्म दिया। लेकिन अंततः नवजागरण के श्रेष्ठ मूल्य और राष्ट्रीय भावना का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप ही हमारे देश को बनाये और बचाया रख सकता है। इकाई को पढ़कर आप इन सभी पक्षों को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।

5.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रजनी पामदत्त : आज का भारत, मैकमिलन, नयी दिल्ली।

डॉ. अयोध्या सिंहः भारत का मुक्ति संग्राम, रेखा प्रकाशन, कलकत्ता।

हरप्रकाश गौड़ः सरस्वती और राष्ट्रीय नवजागरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

ए.आर. देसाईः भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन नयी दिल्ली।

के. दामोदरन : भारतीय चिंतन परंपरा, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

डॉ. रामविलास शर्मा : महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

डॉ. रामविलास शर्मा : भारतेन्दु हरिशचंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

5.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1) ख)

2) ग)

3) स्वामी दयानंद सरस्वती ने

बोध प्रश्न–2

1) घ)

2) घ)

3) उन्होंने सामंती शासकों के साथ समझौता कर लिया।

बोध प्रश्न–3

1 क) स्वामी दयानंद,

ख) महादेव गोविंद रानाडे

ग) राजा रामामोहन राय

2) गरम पंथी राष्ट्रवादी नेता समाज सुधार आंदोलनों के विरोधी थे। उनका दृष्टिकोण धर्म और समाज के मामले में पुरातनपंथी था।

बोध प्रश्न –4

1) राष्ट्र की अवधारणा का उदय पूंजीवाद के उदय के साथ हुआ।

2) भारत में कई धर्मों के मानने वाले लोग सदियों से साथ–साथ रहते आए हैं। उनके बीच सच्ची एकता किसी एक धर्म के वर्चस्व की स्थापना से नहीं हो सकती। वह तो धर्मनिरपेक्षता के द्वारा ही संभव है।

3) एक राष्ट्र के रूप में भारत का उदय राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हुआ।

4) उदारवादी सामाजिक विचारों में प्रगतिशील थे जबकि राष्ट्रवादी राजनीतिक विचारों में अधिक उग्र थे।

अभ्यास

1. अतीत के किसी युग में हुए जागरण को आदर्श मानकर अपने युग के जागरण को उसी की अगली कड़ी मानना पुनर्जागरण है। जैसे भक्ति आंदोलन के जागरण को ही अगली कड़ी और 19वीं सदी के जागरण को मानने पर उसे पुनर्जागरण कहा जाएगा जबकि नवजागरण का इस तरह से अतीत के किसी आंदोलन से संबंध नहीं होता।

2. नवजागरण में एक नये तर्कसंगत, विवेकसम्मत और युग की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यापक सुधार की भावना पर अधिक जोर होता है जबकि पुनरुत्थान में अतीत की पुनःप्रतिष्ठा को अधिक महत्व दिया जाता है। 19वीं सदी के समाज सुधार आंदोलन में कई समाज सुधारकों ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया तो वस्तुतः पुनरूत्थानवादी दृष्टि का ही परिणाम था।

3. नवजागरण के दौरान मध्यकालीन सामंती रूढ़ियों का विरोध स्वाभाविक है। सतीप्रथा, बाल विवाह, जाति–प्रथा, बहुविवाह, अस्पृश्यता आदि कुरीतियों का विरोध इसीलिए किया गया क्योंकि ये मानवीय समानता के विचार से मेल नहीं खाते थे। लेकिन हमारी प्राचीन संस्कृति के वे तत्व जो आज भी उपयोगी हो सकते हैं, उन्हें स्वीकार भी किया गया जैसे विश्व मानवता, धार्मिक सहिष्णुता आदि की भावना।

4. देखिए उपभाग 5.5.3

5. यद्यपि आर्य समाज ने भी बाल–विवाह, वृद्ध–विवाह, बहुविवाह एवं जाति प्रथा का विरोध किया और स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह, का समर्थन किया। परंतु धार्मिक मामलों में उसका दृष्टिकोण असहिष्णु था। न केवल दूसरे धर्मों के प्रति वरन् हिंदू धर्म में भी स्वामी दयानंद केवल वेदों की शिक्षा को ही श्रेष्ठ और सत्य मानते थे और दूसरे पंथों की निंदा करते थे। इससे राष्ट्रीय एकता में सहायता नहीं मिल सकती थी।

6. भाग 5.7 के अंश 'उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष' को देखिए।

7. देखिए भाग 5.8